महोपाध्याय क्षमाकल्याण गणि की संस्कृत साहित्य-साधना

डॉ० दिवाकर शर्मा, एम० ए०, पी०-एच० डी०

बीकानेर मण्डलको अपनी विद्वत्ताकी सत्कीर्तिसे समस्त भारतमें प्रख्यात कर देनेवाले महोपाध्याय क्षमाकल्याण गणि अपने समयके जैन एवं जैनेतर विद्वानोंमें एक अग्रगण्य साहित्य-साधक माने जा सकते हैं। साहित्य-रचनाके साथ आप शास्त्रार्थके लिए भी सदैव कटिबद्ध रहते थे। आपकी इस शास्त्रार्थ-शक्ति और संस्कृत भाषणपर आपके इस असामान्य अधिकारका वर्णन करते हुए क्षमाकल्याणचरितकार कहते हैं कि क्षमाकल्याण सिंहके समान संस्कृतमें गर्जन करते हुए अपने प्रतिपक्षी पण्डितको इस रीतिसे परास्त कर दिया करते थे जैसे कि कोई दहाड़ता हुआ शेर उद्दण्ड शुण्डवाले हाथीको तत्काल पछाड़ देता है।

निर्मर्षणः सिंह इवोन्मुखः क्षमाकल्याणकः संस्कृत-गर्जितं दधत्।
उद्दण्डशुण्डारमिवाशु पण्डितं सम्यग्विजिग्येऽस्खलितोरुयुक्तिभिः॥

आपका जन्म बीकानेर मण्डलके केसरदेसर नामक स्थानपर विक्रम संवत् १८०१को हुआ था। आप ओशवंशमें मालुगोत्रके थे।[१] जन्मसे ही वैराग्यमें रुचि होनेके कारण आपने ११ वर्षकी अल्पायुमें ही पूज्येश्वर श्री अमृतधामजीसे विक्रम संवत् १८१२में पारमेश्वरी प्रव्रज्या स्वीकार कर ली थी।[२] म० म० श्री रत्नसोमजी तथा उपाध्याय श्री रामविजयजी आपके गुरु थे। दीक्षा-प्राप्तिके पश्चात् आपने राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश, बिहार, विदर्भ एवं उत्तरप्रदेशादिका भ्रमण किया।

आपने यतिधर्म स्वीकार करते ही सरस्वतीकी आराधना प्रारम्भ कर दी थी जिसके फलस्वरूप आपने राजस्थानी, प्राकृत एवं संस्कृतकी सैकड़ों लघु एवं बृहद् साहित्यिक रचनाओंका निर्माण किया। साहित्य-रचनाके अतिरिक्त आपने देवप्रतिष्ठा और उद्यापनादि अनेक धार्मिक कार्य करवाये। जीवनचरित सम्बन्धी सामग्रीसे यह भी ज्ञात होता है कि आपका बीकानेर, जैसलमेर व जोधपुरके राजाओं द्वारा सम्मान किया गया था।

गुरु परम्परा

आपके गुरुजन भी धार्मिक सिद्धान्तोंके प्रसिद्ध व्याख्याता थे। आपने अपनी कृतियोंकी अन्तिम पुष्पिकामें और ऐतिहासिक महत्त्वकी स्वरचित खरतरगच्छ पट्टावलीकी प्रशस्तिमें गुरुपरम्पराका उल्लेख निम्न प्रकारसे किया है।[३]

---

१. ग्रामाग्रिमे केसरदेसराह्वये भूखाष्टभूमीमितविक्रमाब्दके (१८०१)
श्री ओशवंशे किल मालुगोत्रे जन्म प्रपेदे स मुनिः शुभेऽह्नि॥—क्षमाकल्याणचरितम्

२. दृग्भूमिवस्विन्दुमितेऽथ वत्सरे (१८१२) वैराग्यमाजन्मत एव धारयन्।
धर्मामृतस्नानविवृद्धलालसे दीक्षां सिषेवेऽमृतधर्मसूरितः॥—क्षमाकल्याणचरितम्

३. श्रीमंतो जिनभक्तिसूरिगुरवश्चांद्रे कुले जज्ञिरे तच्छिष्या जिनलाभसूरिमुनयः श्री ज्ञानतः सागराः।
तच्छिष्याऽमृतधर्मवाचकवरास्तेषां विनेयः क्षमाकल्याणः स्वपरोपकारविधयेऽकार्षिदिमां वृत्तिकाम्॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री जिनभक्तसूरि

जिनलाभसूरि — प्रीतिसागर

प्रीतिसागर → अमृतधाम → उपा० क्षमाकल्याण[1]

स्वर्गवास

आपका स्वर्गवास बीकानेरमें रहते हुए संवत् १८७३में हुआ था। आपके किसी शिष्यने आपके गोलोकवासी होनेपर उर्दूके मरसियाकी तरह संस्कृतमें एक शोकगीतकी रचना की थी। यह शोकगीत अत्यन्त मार्मिक वेदनासे पूर्ण एवं गुरुगुणसे परिपूर्ण है।[2]

साहित्यसाधना

संस्कृत, प्राकृत एवं राजस्थानीपर आपका स्पृहणीय अधिकार था और आपने अपने जीवनकालमें सब मिलाकर छोटे मोटे १५० ग्रन्थोंकी रचना की थी जिनमें २९ रचनाएँ केवल संस्कृतकी हैं। आपके इस साहित्यकी स्वहस्तलिखित अनेक प्रतियाँ बीकानेरके प्रसिद्ध साहित्यसेवी जैन-भास्कर श्री अगरचन्दजी नाहटाके अभयजैन ग्रन्थालयमें सुरक्षित हैं। इनकी इन समस्त कृतियोंमें सबसे अधिक संख्या टीका-ग्रन्थोंकी है। टीकाके विभिन्न प्रकारोंमें आपने टीका, वृत्ति, चूर्णि और फक्किका आदि टीकाके स्वरूपोंपर रचना की है। इन टीकात्मक रचनाओंमें जो-जो विशेष रूपसे प्रसिद्ध हैं वे निम्नलिखित है और इनके साथ ही उनकी अन्य प्रसिद्ध रचनाओंका उल्लेख किया गया है।

श्रीपालचरित्र टीका

श्रीपालचरित्र मूलरूपमें प्राकृत भाषामें लिखा गया है। इसके रचयिता श्री रत्नशेखर सूरि हैं। इसी ग्रन्थपर मुनिप्रवर क्षमाकल्याणने अवचूर्णि नामक टीका लिखी है। यद्यपि यह ग्रन्थ भावनगरसे पत्राकार रूपमें मुद्रित है किन्तु उसमें प्रशस्ति छोड़ दी गयी है। केवल मुद्रित प्रतिके "उपोद्घात"में यह लिख दिया गया है कि "परमत्रावचूर्णिर्या मुद्रिता सा श्रीक्षमाकल्याणकैर्विहितेति प्रघोषः" किन्तु श्री अगरचन्द नाहटाके अभय-जैन ग्रन्थालयमें स्वयं टीकाकार द्वारा लिखित इसकी प्रति प्राप्त है। इस प्रतिके अन्तमें प्रशस्ति दी गयी है।

वर्षे नन्दगुहास्यसिद्धिवसुधा-संख्ये शुभे चाश्विने मासे निर्मलचन्द्रके सुविजयाख्यायां दशम्यां तिथौ।
पूज्यश्रीजिनहर्षसूरिगणभृत्-सद्धर्मराज्ये मुदा श्रीश्रीपालनरेन्द्रचारुचरिते व्याख्या समन्तात् कृता ॥

---

१. श्रीजिनभक्तिसूरीन्द्र-(सु) शिष्या बुद्धिवर्द्धियः। प्रीतिसागरनामानस्तच्छिष्या वाचकोत्तमाः।
श्रीमन्तोऽमृतधर्माख्यास्तेषां शिष्येण धीमता। क्षमाकल्याणमुनिना शुद्धिसम्पत्तिसिद्धये ॥
—खरतरगच्छ-पट्टावली, पट्टावली संग्रह—पृ० ३९।

२. सर्वशास्त्रार्थ-वक्तॄणां, गुरूणां गुरुतेजसाम्। क्षमाकल्याणसाधूनां विरहो मे समागतः।
तेनाहं दुःखितोऽजस्रं विचरामि महीतले। संस्मृत्य तद्गिरो गुर्वीर्धैर्यमादाय संस्थितः।
बीकानेरपुरे रम्ये चतुर्वर्ण्य-विभूषिते। क्षमाकल्याणविद्वांसो ज्ञानदीप्रास्तपस्विनः।
अग्न्यद्रि करि भू वर्षे (१८७३) पौषमासादिमे दले। चतुर्दशी-दिन-प्रान्ते सुरलोकगतिं गताः ॥
—ऐ० जैन० काव्य संग्रह—पृ० ३०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीमन्तो जिनभक्तसूरि-गुरवश्चान्द्रे कुले जज्ञिरे तच्छिष्या जिनलाभसूरिमुनयः श्रीप्रीतितः सागरः।
(—कल्याणाख्या स्वपाठकेन सुधियां चेतः प्रसत्यै सदा)

इस टीकाकी रचना आपने अपने शिष्य श्री ज्ञानचन्द्रमुनिके कहनेपर की थी और इसमें अन्वयकी खण्डान्वय पद्धतिको अपनाया गया है। यथा—कीदृशान् अर्हतः ? अष्टादशदोषैर्विमुक्तान् पुनर्विशुद्धं निर्मलं यत् ज्ञानं तत्स्वरूपमयानिति, पुनः प्रकटितानि तत्त्वानि यैः ते तान् इत्यादि।

आपकी टीकाकी दूसरी विशेषता यह है कि वह संक्षिप्त होनेकी अपेक्षा विस्तृतरूपसे पाठके प्रत्येक पदकी साङ्गोपाङ्ग व्याख्या व दार्शनिक स्थलोंका विशदीकरण भी प्रस्तुत करती है। यथा—सतो भावः सत्ताऽस्तित्वमित्यर्थः,सा सर्वेष्वपि एकैव वर्त्तते, च पुनर्द्विविधो नयः द्रव्यपर्यायादिस्वरूपः तथा कालत्रयं गतिचतुष्कं पञ्चैव अस्तिकाया धर्माधर्माकाशपुद्गलजीवस्वरूपाः सन्ति, च पुनर्द्रव्याणां धर्मास्तिकायादीनां कालद्रव्ययुक्तानां षट्कमस्ति तथा नैगमाद्याः सप्तनयाः सन्ति।

श्रीपालचरित–टीका

इसमें बीच-बीचमें अनेक सुन्दर कहावतोंका प्रयोग भी दर्शनीय है।

"पानीयं पीत्वा किल पश्चाद् गृहं पृच्छ्यते"

"दग्धानामुपरि स्फोटकदानक्रिया किं करोषि"

"पित्तं यदि शर्करया सितोपलया शाम्यति तर्हि पटोलया कोशितक्या क्षारवल्ल्या किम्"।

जीवविचारवृत्ति

श्रीजिन आगमके चार अनुयोगोंमें द्रव्यानुयोग मुख्य अनुयोग है। यह वृत्ति द्रव्यानुयोग शाखाके मुख्य अंश जीवविचारपर लिखी गयी है। यद्यपि इस मुख्यांशपर अनेक विद्वानोंने टीकाएं एवं वृत्तियाँ लिखी हैं किन्तु मुनिप्रवर क्षमाकल्याण द्वारा रचित यह वृत्ति विद्वत् समाजमें सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। इस वृत्तिका रचनाकाल भाद्रपद शुक्लपक्षकी सप्तमी संवत् १८५० है।[1] परम्परानुसार वृत्तिकारने इस वृत्तिमें भी अपने गुरुओंका आदरके साथ उल्लेख किया है। जिस श्लोक द्वारा गुरु-स्मरण किया गया है वह श्लोक श्रीपालचरितके श्लोकका ही २-३ शब्दोंके हेर-फेरसे किया हुआ एक रूपान्तर मात्र है।

जीवविचार भी मूलरूपमें प्राकृत भाषाका ग्रन्थ है। इसके प्राकृत सूत्रोंको स्पष्ट रूपसे समझानेके लिए मुनिवरने इस वृत्तिमें संस्कृतका आश्रय लेकर जिस रीतिसे सूत्रोंके सार मर्मको प्रकाशित किया है वह सर्वथा हृदयहारी है। यथा—

"सिद्धा पनरस भेया, तित्थ अतित्थाई सिद्धभेएण। एए सखेवेणं जीवविप्पा समखाया"।

वृत्ति

सिद्धाः सर्वकर्मनिमुक्ता जीवाः, तीर्थंकरातीर्थंकरादिसिद्धभेदेन पञ्चदश भेदा ज्ञेयाः। अत्र सूत्रे प्राकृतत्वात्करपदलोपः। तत्र तीर्थंकराः सतो ये सिद्धास्ते तीर्थकरसिद्धाः अतीर्थंकराः सामान्याः केवलिनः संतो ये सिद्धास्तेऽतीर्थंकरसिद्धाः। आदिपदात्तीर्थसिद्धाः अतीर्थसिद्धादिपंचदश भेदा नवतत्त्वादिभ्यो ज्ञातव्याः। इत्थं संक्षेपेण एते जीवानां विकल्पाः भेदाः समाख्याताः कथिताः। —जीवविचारवृत्ति

---

१. संवद् व्योमशिलीमुखाष्ट वसुधा (१८५०) संख्ये नभस्ये सिते पक्षे पावन-सप्तमी सुदिवसे बीकादिनेराभिधे।
श्रीमति पूर्णतामभजत व्याख्या सुबोधिन्यसौ सम्यक् श्रीगुणचन्द्रसूरिमुनिये गच्छेशतां बिभ्रति॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तर्कसंग्रह फक्किका

तर्कसंग्रह फक्किकाकी रचना मुनि क्षमाकल्याणने संवत् १८२८में की थी।[१] यह फक्किका श्री अन्नंभट्टके तर्कसंग्रहकी स्वोपज्ञदीपिकाटीकाकी एक सरल टीका है। तर्कसंग्रहकी दीपिकाके प्रतिपादनपर अपनी कोई स्वतन्त्र समालोचना न लिखकर दीपिकाके भावार्थको इस फक्किकामें जिस रीतिसे स्पष्ट किया गया है वह फक्किकाकारकी समझानेकी शैलीकी विशेषता है। मुनि क्षमाकल्याण दीपिकाकारके लक्षणों और स्वरचित लक्षणोंका पदकृत्य काव्यकी खण्डान्वय पद्धतिका अनुसरण करते हुए कहते हैं। यथा—किं नाम उद्देशत्वम्? "नाममात्रेण पदार्थसंकीर्तनम् उद्देशत्वं" ताल्वोष्ठव्यापारेणोच्चारणं संकीर्तनम्। इहवंशे पाठ्यमान-दलद्वयविभागजन्यचटचटाशब्दे अतिव्याप्तिवारणाय नामपदम्, बंध्यापुत्रे अतिव्याप्तिवारणाय पदार्थपदम्, लक्षणवाक्ये अतिव्याप्तिवारणाय मात्रपदम्।

साध्यव्यापकत्वे सति साधनाव्यापकत्वाद् आर्द्रेन्धनसंयोग उपाधिः। उपाधिके इस लक्षणपर दीपिकाकारने "उपाधिश्चतुर्विधः—केवल साध्यव्यापकः, पक्षधर्मविच्छिन्नसाध्यव्यापकः" आदिके द्वारा उपाधिका वर्गीकरण अवश्य किया है परन्तु लक्षणके प्रत्येक पदको समझानेका इसमें कोई प्रयत्न नहीं किया गया। मुनिप्रवर क्षमाकल्याणकी फक्किका इसके लिए विशेष सहायक होती है। यथा—साध्येति–साध्यो धूमः, तत्समानाधिकरणो योऽत्यत्रभाव आर्द्रेन्धनसंयोगाभावस्तु नायाति, तर्हि घटपटाद्यत्यन्ताभावः तस्य प्रतियोगित्वं वर्त्तते घटादौ, अप्रतियोगित्वम् वर्त्तते आर्द्रेन्धनसंयोगे।

इस उदाहरणसे यह स्पष्ट है कि मुनि क्षमाकल्याण पदपदार्थके रहस्यको पूर्णरूपेण समझा देनेकी अपूर्व क्षमता रखते हैं।

गौतमीय काव्यम् टीका

"गौतमीय काव्यम्" क्षमाकल्याणजीके गुरु पाठक श्रीरूपचन्द्र गणि द्वारा विरचित एक महाकाव्य है। इसपर गौतमीयप्रकाश नामकी यह विशद व्याख्या श्री क्षमाकल्याणने १८५२में लिखी थी।[२]

आपके द्वारा लिखित समस्त टीकाओं, वृत्तियों एवं व्याख्याओंमें यह टीका सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। इसमें मूल लेखकके गम्भीर एवं गूढ़ विचारोंको अत्यन्त सरल एवं मनोरम रूपमें स्पष्ट करनेका पूर्ण प्रयास किया गया है। इसमें जैनसिद्धान्तोंकी स्थापनाके लिए बौद्ध,[३] वेदान्त[४] और न्यायादि[५] दर्शनोंका युक्तियुक्त

---

१. तद्विनेयेन क्षमादिकल्याणेन मनीषिणा। तर्कसंग्रहसूत्रस्य संवृतेः फक्किका इमाः।
यथाश्रुता गुरुमुखात् तथा सङ्कलिताः स्वयम्। वसुनेत्रे सिद्धिचन्द्रप्रमिते हायने मुदा ॥—तर्कसंग्रह फक्किका

२. (अ) बाहुज्ञानवसुक्षमा (१८५२) प्रमितिजे वर्षे नभस्युज्ज्वले।
एकादश्यां विलसत्तिथौ कुमुदिनीनाथान्वितायामिह ॥
(आ) तच्छिष्यो वरधर्मवासितमतिः प्राज्ञः क्षमापूर्वकः कल्याणः कृतवानिमां कृति जनः स्वान्तप्रमोदाप्तये।
बुद्धेर्मन्दतया प्रमादवशतो वा किंचिदुक्तं मयाऽत्राशुद्धं परिशोधयन्तु सुधियो मिथ्याऽस्तु मे दुष्कृतम् ॥

३. तथा तेषां शून्यवादिनां बौद्धैकदेशिनां शून्यता एव परं प्रधानं तत्त्वं विद्यते, तेषां वाचो गिरोऽर्थशून्यत्वाद-भिधेयहीनत्वात्कदापि कस्मिन्नपि काले न प्रतीताः स्युर्न प्रतीतियुक्ता भवन्ति। अयमर्थः ये खलु सर्वं-शून्यामेवास्तीति वदन्ति तेषां वाचोऽपि सर्ववस्त्वन्तर्गतत्वात् शून्या एव, ततश्चार्थशून्ये तद्वचने को विद्वा-न्प्रतीतिं कुर्वीतेति ॥ सर्ग ७।७३।

४. वेदान्तिनां मतं वेदान्तिमतं तदाश्रित्य यद्यपि ब्राह्मण आत्मन ऐक्यमेकत्वं स्थितम्, तथापि हे गौतम लिङ्गस्य चिह्नस्य भेदेन आत्मनो जीवनस्य भेदं नानात्वमवधारय जानीहि। वेदान्ति-मतं तावदिदम् "एकएव हि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूर्ण खण्डन जिस रीतिसे किया गया है उससे व्याख्याकारकी समर्थ विद्वत्ता, प्रौढ़ अनुभवशीलता तथा अनुपम विवेचनशक्तिका ज्ञान होता है।

यशोधरचरित्रम्

मुनि क्षमाकल्याण द्वारा रचित इस चरित्र का रचनाकाल संवत् १८३९ है।[1] इसमें एक पाप करनेसे किन-किन योनियोंमें भटकते हुए उस पापका प्रायश्चित्त करना होता है इसका साङ्गोपाङ्ग वर्णन एक माता द्वारा बलात् अपने पुत्रको एक मुर्गेका मांस भक्षण करा देनेसे उनके भिन्न-भिन्न १० जन्मोंका वर्णन किया गया है। वे मयूर-श्वान, नकुल-भुजङ्ग, मत्स्य-ग्राह, अज-मेष, मेष-महिष, मुर्गा-मुर्गी आदि योनियोंमें उत्पन्न होते रहे और अपने-अपने पूर्व जन्मानुसार उनका फल भोगते रहे।

इस चरित्रकी वर्णन-शैली और इसकी भाषापर बाण एवं दण्डीका प्रभाव स्पष्ट रूपसे परिलक्षित होता है। नीचे लिखे उपदेशमें कादम्बरीके शुकनाशोपदेशकी झलक स्पष्ट है। यथा—तात! दारपरिग्रहो नाम निरौषधो व्याधिः, आयतनं मोहस्य, सभा व्याक्षेपस्य, प्रतिपक्षः शान्तेः, भवनं मदस्य, वैरी शुद्धध्यानानाम्, प्रभवो दुःखसमुदायस्य, निधनं सुखानाम् आवासो महापापस्य।[2]

बाणकी इस अनुकृतिके साथ निम्नलिखित गद्यांशमें दशकुमारचरितकी गद्यशैली भी पूर्ण सफलताके साथ अपनायी गयी है। यथा—

अथ एवंविधे तत्राऽतीव भयङ्करे व्यतिकरे बहुभिस्तपोधनैः परिवृतः परमसंवृतः सदासुदृष्टिर्युगमात्रभूमि-स्थापितदृष्टिर्महोपयोगी।[3]

होलिका व्याख्यानम्

धार्मिक पर्वों पर व्रत-उपवासादिके महत्त्वको बतानेवाले प्रवचनों और कथाओंको जैनविद्वान् व्याख्यान कहते हैं। मौन एकादशी, दीपावली, होलिका, ज्ञानपञ्चमी, अक्षयतृतीया और मेरु त्रयोदशी आदि पर्वोंपर

भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः। एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत् यथा विशुद्धमाकाशं तिमिरोपप्लुतो जनः संकीर्णमिव मात्राभिर्भिन्नाभिरभिमन्यते। तथेदममलं ब्रह्म निर्विकल्पमविद्यया कलुषत्वमिवापन्नं भेदरूपं प्रकाशते। सर्ग ७।७४।

५. यदि केवलं चक्षुरिन्द्रियग्राह्यमेव प्रत्यक्षं स्यात् तदा गन्धादि-विषये गन्धरस-स्पर्शादिविषये निरुपाधिक-मुपाधिवर्जितं प्रत्यक्षं ज्ञानं किमुच्यते कथं प्रोच्यते? तस्मात्प्रागुक्तमेव तल्लक्षणं ज्ञेयम्। चाक्षुषमिति चक्षुषा गृह्यते इत्यर्थे विशेषे इत्यण्। निरित्यादि। निर्गत उपाधिर्यस्मात् स्वसमीपवर्तिनि स्ववृत्तिधर्म-सङ्क्रामकत्वमुपाधित्वमिति तल्लक्षणम्। ७।५०।

१. (अ) वर्षे नन्दकृशानु-सिद्धि-वसुधासङ्ख्ये (१८३९) नभस्य सिते पक्षे पावनपञ्चमी सुदिवसे॥

(आ) सूरिश्रीजिनभक्ति-भक्तिनिरताः श्रीप्रीतितः सागराः
तत् शिष्यामृतधर्मवाचकवराः सन्ति स्वधर्मादराः।
तत्पादाम्बुजरेणुराप्तवचनः स्मर्ता विपश्चित् क्षमा-
कल्याणः कृतवान् मुदे सुमनसामेतच्चरित्रं स्फुटम्॥—यशोधरचरित्रम्-अन्तिम प्रशस्ति।

२. यशोधरचरित्रम्-पृष्ठ ४९।

३. यशोधरचरित्रम्—पृष्ठ ३३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इनका आयोजन विशेषरूपसे होता है। विक्रम संवत् १८३५ में रचित 'होलिका व्याख्यानम्' क्षमाकल्याण मुनिका सबसे पहला व्याख्यान है।[1] इसका पठन-पाठन होलिका पर्वपर किया जाता है।

इत्थं वृथैव संभूतं होलिकापर्व विज्ञाय सुधीभिः शुभार्थं कर्त्तव्यं किन्तु तस्मिन् दिने प्रतिक्रमण-व्रत-जिनपूजादिधर्मकार्यं विधेयम्, यो हि होलिकाज्वालायां गुलालस्यैकां मुष्टिं प्रक्षिपति तस्य दश उपवासाः प्रायश्चित्तम्, एककलशप्रमाण-जलप्रक्षेपणे शतमुपवासानां प्रायश्चित्तम्, एकपूंगीफलप्रक्षेपे पञ्चाशत् वाराः होलिकायां काष्ठप्रक्षेपे सहस्रशो भस्मीभवनं भवति।[2]

मेरुत्रयोदशीव्याख्यानम्

मेरुत्रयोदशीव्याख्यानम्की रचना महोपाध्याय क्षमाकल्याण द्वारा संवत् १८६० में बीकानेर प्रवासके समय की गयी थी।[3] इसमें मेरु त्रयोदशीके व्रतसे पङ्गुत्व दूर होनेकी कथा कही गयी है। गांगिल मुनिके उपदेशसे राजकुमारने यह व्रत किया था और अन्तमें स्वस्थ होकर उसने मलय देशकी राजकुमारीसे विवाह कर लिया।

इस कथानकको अत्यन्त सीधे शब्दोंमें जैन श्रावकोंको समझाया गया है। कथामें व्यावहारिक शैलीके अनुरूप शब्दोंका चयन किया गया है। वाक्य छोटे-छोटे होते हुए भी अत्यन्त सरस हैं। यथा—धर्मस्य मूलं दया, पापस्य मूलं हिंसा, यो हिंसां करोति, अन्यः कारयति, अपरोऽनुमन्यते एते त्रयोऽपि सदृश पापभाजः पुनर्यो हिंसां कुर्वन् मनसि त्रासं न प्राप्नोति, यस्य हृदये दया नास्ति, यो जीवो निर्दयः सन् बहून् एकेन्द्रियान् विनाशयति स परभवे वातपित्तादिरोगभाग् भवति।[4]

चैत्यवन्दन-चतुर्विंशतिका[5]

चैत्यवन्दन चतुर्विंशतिकामें महोपाध्याय क्षमाकल्याणने २४ तीर्थंकरोंकी स्तुति अलग-अलग छन्दोंमें की है। प्रत्येक चैत्यकी स्तुति ३ श्लोकों द्वारा की गयी है परन्तु मल्लिजिन चैत्यके वन्दनामें ५ श्लोक होनेसे इसकी सम्पूर्ण श्लोक संख्या ७४ है। भाषा-सौष्ठव और भावोंकी सुन्दर अभिव्यक्तिके कारण जैन स्तोत्र साहित्यमें इस स्तोत्रको सिद्धसेन दिवाकरके कल्याण मन्दिर और मेरुतुङ्गके भक्तामर आदि स्तोत्रोंकी श्रेणीमें रखा जाता है।

---

१. (क) श्रीमन्तो गुणशालिनः समभवन्, प्रीत्यादिमाः सागरास्तच्छिष्यामृतवाचकवराः सन्ति स्वधर्मादराः।
तत्पादाम्बुजरेणुराप्तवचनस्मर्ता विपश्चित् क्षमाकल्याणः कृतवानिदं सुविशदं व्याख्यानमाख्यानभृद्॥
—होलिका व्याख्यानम्-अन्तिम प्रशस्ति।

(ख) संवदबाणकृशानुसिद्धिवसुवा १८३५ संख्ये नभस्येऽसिते पक्षे पावन-पंचमी सुदिवसे पाटोधिसंज्ञे पुरे॥
—होलिका व्याख्यानम्-अन्तिम प्रशस्ति।

२. होलिकाव्याख्यानम्-द्वादश कथा संग्रह-पृष्ठ २८।

३. संवद् व्योमरसाष्टेन्दु (१८६०) मिते फाल्गुन मासके। असितैकादशीतिथ्यां बीकानेराख्यसत्पुरे।
व्याख्यानं प्राक्तनं वीक्ष्य निबद्धं लोकभाषायां। अलेखि संस्कृतीकृत्य क्षमाकल्याणपाठकैः॥
—मेरु त्रयोदशी व्याख्यानम्-प्रशस्ति

४. मेरु त्रयोदशी व्याख्यानम्-पृष्ठ ४।

५. इत्थं चतुर्विंशति संख्ययैव प्रसिद्धिभाजां वरतीर्थभाजाम्।
श्रीजैन वाक्यानुसृतप्रबंधा वृत्तैरहीना प्रणुतिर्नवीना॥
गणाधिपश्रीजिनलाभसूरिप्रभुप्रसादेन विनिर्मितेयम्।
जिनप्रणीतामृतधर्मसेविक्षमादिकल्याणबुधेन शुद्धचै॥
—चैत्यवन्दन-चतुर्विंशतिका-प्रशस्ति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस स्तोत्रकी प्रशस्ति अथवा इसके उपसंहारमें रचनाकालका उल्लेख नहीं है। श्लोकोंकी रचनासे यदि अनुमान करें तो वे सब एक समान काव्यशक्तिसे सम्पन्न दिखाई नहीं देते। कुछमें केवल शब्दानुप्रास है और कुछ उच्चकोटिकी प्रौढि और भावभक्तिसे पूर्ण दिखाई देते हैं। इससे ज्ञात होता है कि क्षमाकल्याणने इसकी रचना एक समय न करके विभिन्न समयोंमें की है।

इस स्तोत्रमें शार्दूलविक्रीडित, मालिनी, स्रग्धरा, द्रुतविलम्बित, उपेन्द्रवज्रा, भुजङ्गप्रयात, त्रोटक, वंशस्थ, वसन्ततिलका, हरिणी, रथोद्धता, मन्दाक्रान्ता, कामक्रीडा, गीतपद्धति, पंचचामर, उपजाति और पृथ्वी छन्दोंका प्रयोग किया गया है। छन्दोंकी इस तालिकासे स्पष्ट है कि क्षमाकल्याणका प्रत्येक छन्दपर अधिकार था और कुछ छन्द तो ऐसे हैं जिनका अन्य स्तोत्रोंमें दर्शन भी नहीं होता।

रचना सौन्दर्य एवं भक्ति-उद्रेक

स्तुतियोंमें क्षमाकल्याण जिन विशेषणोंका प्रयोग करते हैं वे विशेषण शरीरकी आकृतिसे सम्बन्ध न रखकर अपने इष्टदेवोंके उन गुणोंका स्मरण करते हैं जो उनके जीवनकी विशेषताके द्योतक हैं। संभवेश प्रशमरसमय हैं तो वीरप्रभु अपने ज्ञानप्रकाशसे विवेकिजनवल्लभ हैं।

विवेकिजनवल्लभं भुवि दुरात्मनां दुरन्तदुरितव्यथाभरनिवारणे तत्परम्।
तवाङ्गपदपद्मयोर्युगमनिन्द्य वीरप्रभो प्रभूतसुखसिद्धये मम चिराय सम्पद्यताम्॥

यद्भक्त्यासक्तचित्ताः प्रचुरतरभवभ्रान्तिमुक्ताः
संजोताः साधुभावोल्लसितनिजगुणान्वेषिणः सद्य एव।
स श्रीमान् संभवेशः प्रशमरसमयो विश्वविश्वोपकर्ता
सद्भर्ता दिव्यदीप्ति परमपदकृतेसेव्यतां भव्यलोकाः॥

जहाँ संभवेशकी स्तुतिमें क्षमाकल्याण भावोंसे ओतप्रोत दिखाई देते हैं वहाँ धर्मनाथ चैत्यकी वन्दनामें एक ही प्रकारके प्रत्ययान्त शब्दोंके प्रयोग और अनुप्रासकी छटामें ही आप अपनी विशेषता दिखाते प्रतीत होते हैं।

निःशेषार्थप्रादुष्कर्ता सिद्धेर्भर्ता संहर्ता
दुर्भावानां दूरेहर्ता दीनोद्धर्ता संस्मर्ता।
सद्भक्तेभ्यो मुक्तेर्दाता विश्वत्राता निर्माता।

आपके कुछ श्लोक ऐसे भी हैं जो मधुर और कोमलकान्त पदावलीके कारण विशेष रूपसे आकर्षक माने जा सकते हैं।

विशदशारद-सोमसमाननः कमलकोमल-चारुविलोचनः।
शुचिगुणः सुतरामभिनन्दनः जयतु निर्मलताञ्चितभूधनः॥

स्तोत्रके इन कतिपय उदाहरणोंसे इस स्तोत्रकी रचनशैली और इसके भावोंकी भूमिकाका सामान्य ज्ञान पाठक प्राप्त कर सकते हैं।

उपसंहारमें यही कहा जा सकता है कि इन समस्त ग्रन्थोंके अनुशीलनसे ज्ञात होता है कि महोपाध्याय क्षमाकल्याणका संस्कृत भाषापर पूर्ण अधिकार था। आपकी संस्कृत भाषा प्रत्येक विषयके प्रतिपादनमें सर्वथा प्रवाहशील रहती थी। होलिकाव्याख्यानम्में यदि यह भाषा कुछ स्थलोंमें समस्त हो गयी है तो अक्षयतृतीया व्याख्यानम्में यह विशेष रूपसे अभिव्यञ्जक बन गयी है। यशोधर चरित्रके उपदेशमें आपने कादम्बरीके शुकनासोपदेशका अनुसरण और अनुकरण भी परम सुन्दर रीतिसे किया है।

कथाओंके अतिरिक्त आपने जैन चरितों, काव्यों तथा दार्शनिक ग्रन्थोंपर जिन टीकाओं एवं वृत्तियोंको लिखा है, उन सबका विवेचन भी उत्तमकोटिकी टीकाशैली एवं वृत्तिशैलीके अनुकूल ही है। काव्योंमें आपकी गौतमीय काव्यकी टीका पाण्डित्यकी दृष्टिसे सर्वोत्तम है। इस काव्यमें बौद्धों, वेदान्तियों, नैयायिकों आदि समस्त दार्शनिकोंकी आलोचना सुन्दर रूप की गयी है। ●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org